मुंशी प्रेमचंद

हिंदी साहित्य में लोकप्रियता की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास के बाद मुंशी प्रेमचंद का अपना विशिष्ट स्थान है। भारत ही नहीं, वे विदेशों, विशेषत: रूस में भी लोकप्रिय हैं। सामान्यत: वह उपन्यास सम्राट् के रूप में जाने जाते हैं, किंतु वह अपने समय में सहृदय भारतीय जनता के हृदय सम्राट् भी बने। वे प्रगतिशील साहित्यकार थे।

प्रेमचंद आधुनिक कथा साहित्य में नवयुग के प्रवर्तक थे। कुछ लोग उन्हें भारत का गोर्की कहते हैं तो कुछ लोग हार्डी के रूप में देखते हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में अधिकांशत: ग्रामीण वातावरण का चित्रण किया है।

प्रेमचंद का जन्म 1 जुलाई, 1880 को बनारस (अब वाराणसी) से लगभग छह मील दूर स्थित गाँव लमही में हुआ। वे पिता अजायबराय और माँ आनंदी देवी की संतान थे। उनके तीन बहनें और एक छोटा भाई भी था। उनकी दो बहनें बचपन में ही अकाल मृत्यु की शिकार हो गई थीं।

प्रेमचंद का परिवार मूलत: कृषक था। उन दिनों कृषि कार्य लाभदायक नहीं रह गया था, इसलिए प्रेमचंद के पिता ने डाकखाने में काम करना शुरू कर दिया। प्रेमचंद

के जन्म के समय उनके पिता की तनख्वाह करीब बीस रुपए माहवार थी, जिससे घर का खर्च चलाना भी मुश्किल था।

प्रेमचंद का मूल नाम धनपतराय था, किंतु परिवारजन उन्हें 'नवाब' कहते थे। जब वह पाँच वर्ष के थे, उनकी माँ का देहांत हो गया। उसके बाद उन्हें एक करीबी गाँव के मदरसे में पढ़ने के लिए दाखिल कर दिया गया। उस समय शिक्षा में फारसी और उर्दू की खास अहमियत होती थी। उनके लिए मदरसे की यह जिंदगी बड़ी दिलचस्प साबित हुई। नवाब अकसर मदरसे से गायब हो जाते थे और अगले दिन गैर-हाजिरी के नित नए बहाने पेश कर देते थे।

कुछ महीने के अंतराल में उनके पिता का तबादला होता रहता था। बाँदा से बस्ती, बस्ती से आजमगढ़, गोरखपुर, कानपुर, लखनऊ। सफर करने में नवाब को बड़ा मजा आता था। सफर के खयाल से ही वह खुशी से झूमने लगते थे। नई जगह देखने का तो शौक होता ही था, पिताजी भी गाँव के मुकाबले नई जगह पर इतनी सख्ती से काम नहीं लेते थे और हर वक्त झिड़कियाँ देनेवाली माँ भी नहीं रहती थीं, क्योंकि अकसर वह गाँव में ही रहती थीं।

माँ की मृत्यु के बाद नवाब को सर्वाधिक स्नेह अपनी बड़ी बहन से मिला था। मगर जब बहन की शादी हो गई तब नवाब अकेले रह गए। करीब चौदह साल की उम्र में प्रेमचंद की शादी कर दी गई। पत्नी सुंदर नहीं थी और उसका स्वभाव भी अच्छा नहीं था। इसलिए नवाब की उससे नहीं बनी। सन् 1905 में एक दिन वह प्रेमचंद को अकेला छोड़कर हमेशा के लिए मायके चली गई। बाद में नवाब ने एक बाल विधवा शिवरानी देवी से शादी कर ली।

जब नवाब अपने पिताजी के साथ गोरखपुर में थे तो वहाँ उनकी जान-पहचान

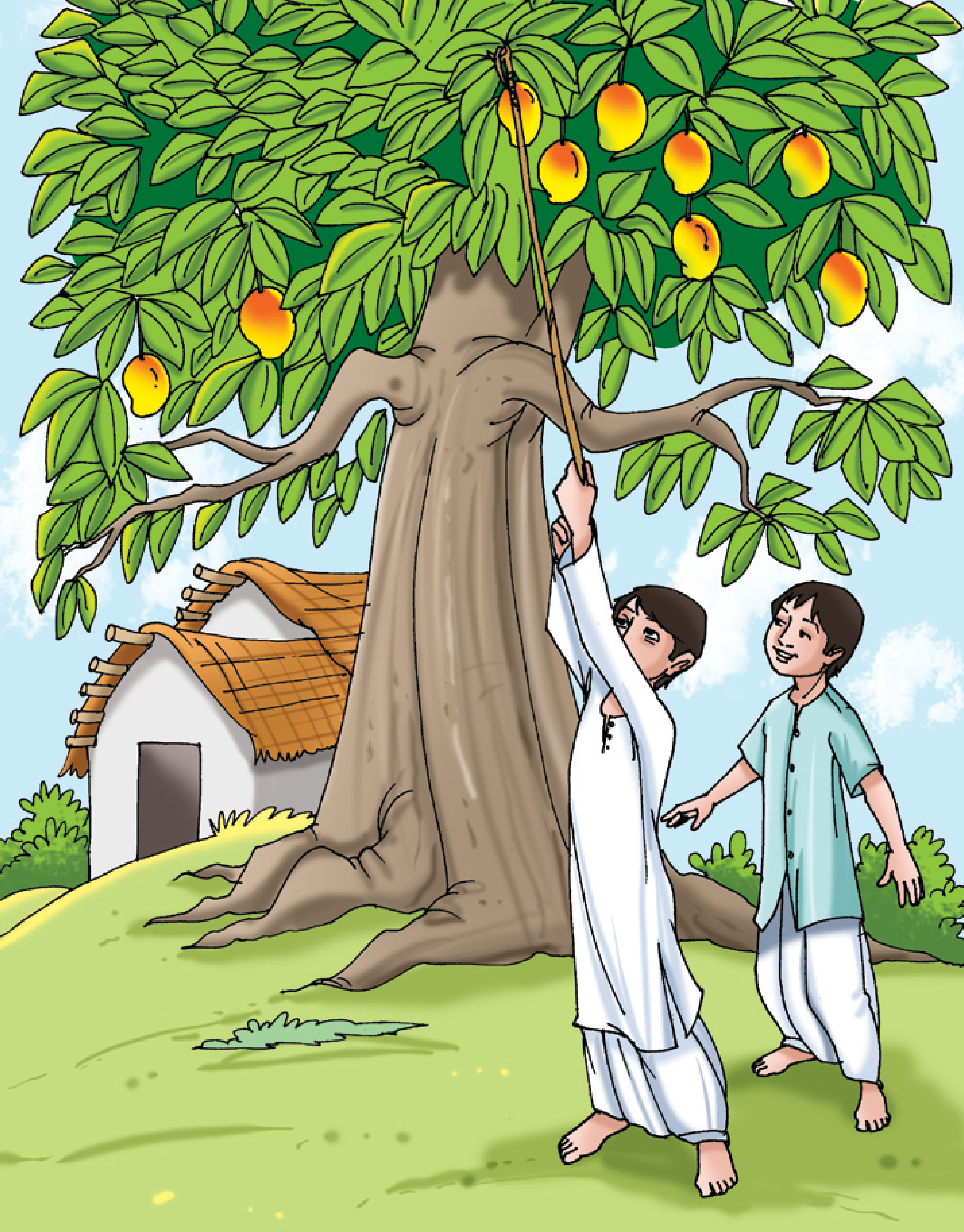

एक किताब बेचनेवाले से हो गई, जिसका नाम बुद्धिलाल था। उस वक्त उनकी उम्र करीब तेरह साल थी। उन्हें हिंदी नहीं आती थी। वह उर्दू उपन्यासों के दीवाने थे।

उस जमाने के लोकप्रिय उपन्यासकार मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसबा और हरदोई के मौलवी मुहम्मद अली आदि का यदि कोई उपन्यास मिल जाता तो नवाब स्कूल के बारे में सबकुछ भूल जाते और जब तक वह उसे पूरा पढ़ न लेते, उन्हें चैन न आता।

रेनॉल्ड्स के उपन्यासों की भी उन दिनों बड़ी धूम थी। उनकी किताबों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित होते थे और हाथोहाथ बिक जाते थे। नवाब इन उपन्यासों के भी दीवाने थे। दो-तीन वर्षों में उन्होंने सैकड़ों उपन्यास पढ़ लिये। उपन्यास पढ़ने के बाद उन्होंने पुराणों के वे उर्दू अनुवाद पढ़ डाले, जो नवल किशोर प्रेस ने प्रकाशित किए थे। इसी जमाने में उन्होंने 'तिलिस्म-इ-होशरुबा' की भी कई जिल्दें पढ़ डालीं।

घर में बीवी थी, सौतेली माँ थी, उसके दो बच्चे थे और आमदनी धेले की नहीं थी। जो कुछ जमा-जथा थी, वह पिताजी की छह महीने की लंबी बीमारी और क्रिया-कर्म में खर्च हो चुकी थी।

नवाब की इच्छा थी कि वे एम.ए. पास करके वकील बनें। उस जमाने में भी नौकरी उतनी ही मुश्किल से मिलती थी, जितनी आजकल। बड़ी कोशिश करने पर ही दस-बारह रुपए महीने की नौकरी मिल सकती थी। लेकिन नवाब अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहते थे।

नवाब बनारस के क्वींस कॉलेज की दसवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। हेडमास्टर ने उनकी फीस माफ कर रखी थी। इम्तहान शुरू होने वाले थे। वे साढ़े तीन बजे स्कूल के बाद एक लड़के को पढ़ाने बाँस-फाटक पर जाते थे, जो वहाँ से पाँच मील दूर था।

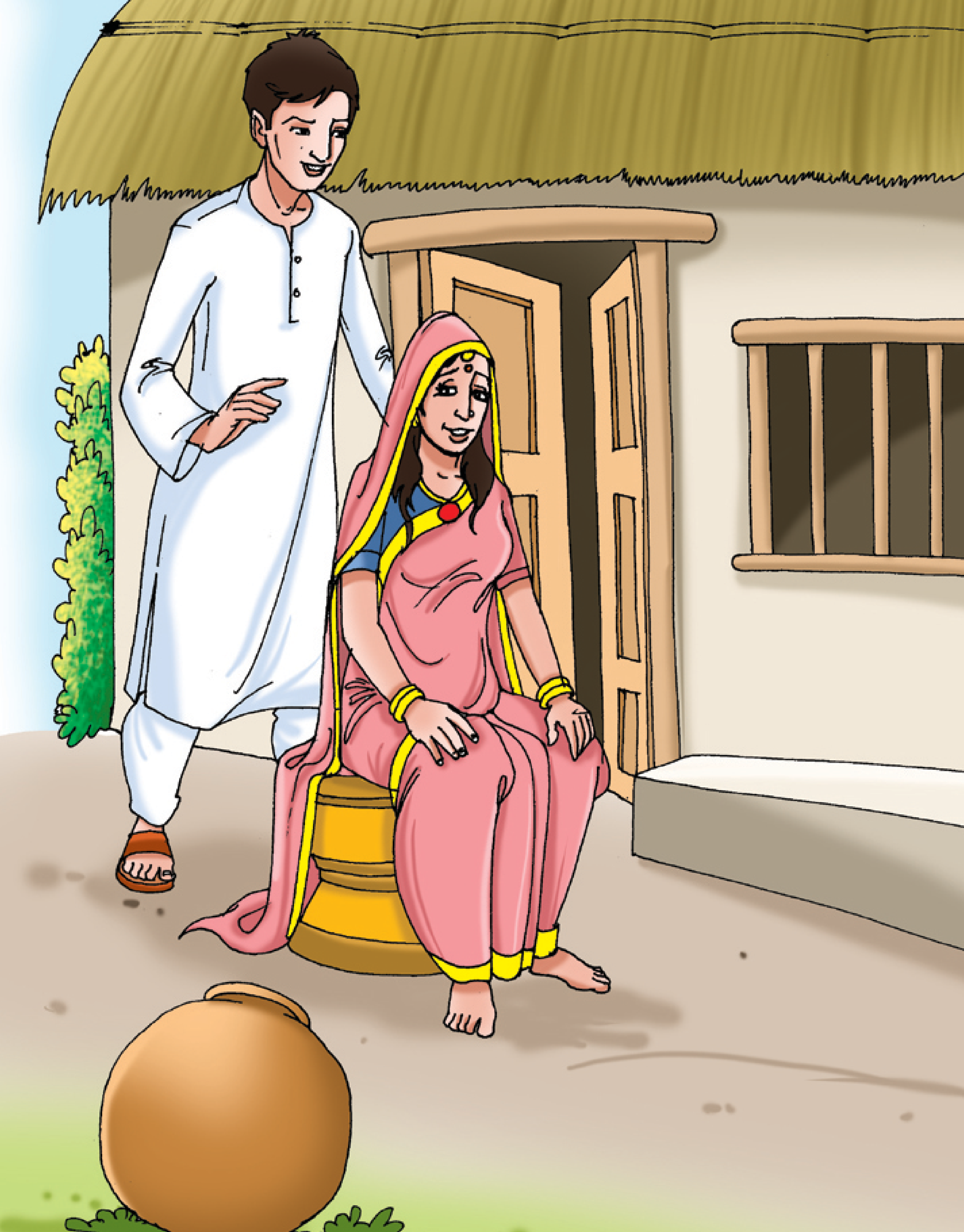

बहुत तेज कदमों से चलकर भी वे आठ बजे से पहले घर नहीं पहुँच पाते थे। रात को खाने के बाद वे मिट्टी के दीये की रोशनी में पढ़ते थे और पढ़ते-पढ़ते कब सो जाते, इसका उन्हें भी पता नहीं चलता। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी।

पिताजी के देहांत के बाद हालात बहुत बिगड़ गए थे, जिनकी वजह से नवाब राय इम्तहान में नहीं बैठ सके।

सन् 1898 में नवाब इम्तहान में बैठे। इम्तहान में पास तो हो गए, लेकिन द्वितीय श्रेणी में, जिसकी वजह से क्वींस कॉलेज की अगली कक्षा में दाखिला मिलने की उम्मीद न रही, क्योंकि वहाँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवालों की फीस ही माफ हो सकती थी।

उसी साल हिंदू कॉलेज की शुरुआत हुई थी। नवाब ने उस कॉलेज में दाखिला लेने का निश्चय किया। लेकिन वे दाखिले के इम्तहान में गणित में फेल हो गए। गणित में वे बहुत कमजोर भी थे। इसलिए उन्हें हिंदू कॉलेज में दाखिला नहीं मिल सका; बल्कि इस कमजोरी की वजह से वे कई साल तक इंटरमीडिएट का इम्तहान भी पास नहीं कर सके।

नवाब दो बार प्राइवेट छात्र की हैसियत से इम्तहान में बैठे और दोनों बार फेल हुए। आखिरकार उन्होंने पास होने की उम्मीद ही छोड़ दी। वे पास हुए उस वक्त जब गणित के बजाय किसी दूसरे विषय में इम्तहान देने की छूट दे दी गई थी। इस तरह प्रेमचंद ने सन् 1910 में इंटरमीडिएट का इम्तहान पास किया। इसी प्रकार उन्होंने नौकरी करते हुए बी.ए. की परीक्षा पास की।

जब नवाब सोलह साल के थे, एक बार उन्हें तीन दिनों तक भूखे रहना पड़ा। कोई उपाय न देखकर अंत में वह एक दुकान पर अपनी पुरानी पाठ्य-पुस्तकें बेचने गए।

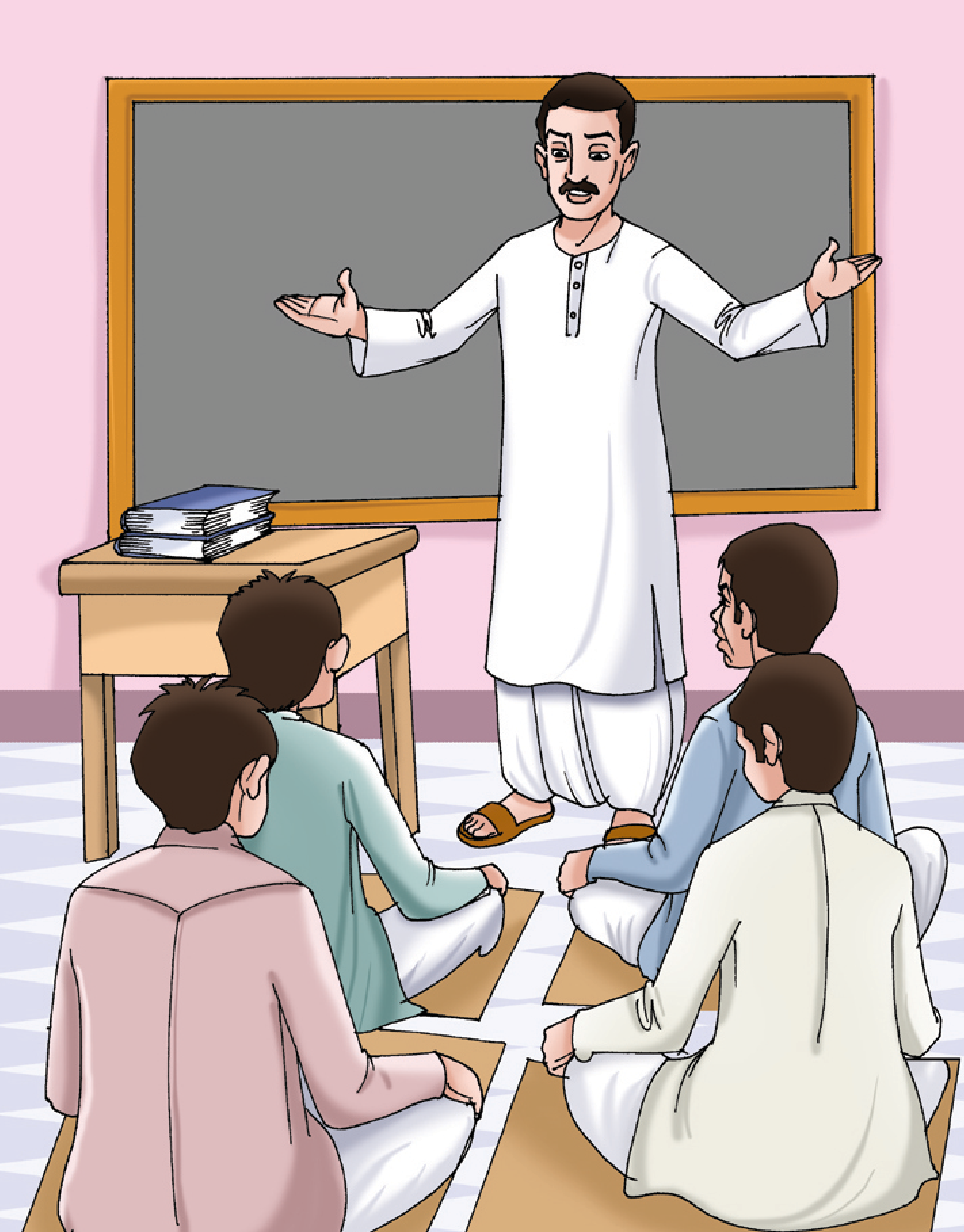

दुकान पर एक स्कूल हेडमास्टर भी किसी कार्य से मौजूद थे। प्रेमचंद को पाठ्य-पुस्तकें बेचते देखकर उन्होंने कारण जानना चाहा। प्रेमचंद ने उन्हें यथास्थिति बता दी।

हेडमास्टर को उनपर दया आ गई। उन्होंने नवाब को अपने स्कूल में 18 रुपए मासिक वेतन पर बच्चों को पढ़ाने का प्रस्ताव रखा, जिसे प्रेमचंद ने स्वीकार कर लिया। उस वक्त वे इतने निराश हो चुके थे कि 18 रुपए की बात वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे। उन्होंने उनसे अगले दिन मिलने का वादा किया और वहाँ से खुशी-खुशी रवाना हुए। यह सन् 1899 की बात है।

प्रेमचंद ने सन् 1901 में कहानी लिखना शुरू किया। उन्होंने पहली कहानी 'अनमोल रत्न' उर्दू में लिखी थी, जो बहुत चर्चित हुई। इस कहानी की शैली तो उस जमाने की तरह ही पुरानी है, लेकिन इसमें नई बात यह कही गई थी कि देश की आजादी की लड़ाई में बहाए गए खून का एक कतरा दुनिया के महँगे-से-महँगे रत्न से ज्यादा कीमती है।

सन् 1902 में उनका पहला उपन्यास 'वरदान' प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रेम और विवाह की सामाजिक समस्या का चित्रण किया गया है। उनका अगला उपन्यास 'प्रतिज्ञा' विधवाओं की समस्या पर आधारित था, जो सन् 1906 में प्रकाशित हुआ।

इस बीच प्रेमचंद ने देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत कई कहानियाँ लिखीं, जो पुस्तकाकार 'सोजे वतन' में सन् 1908 में छपीं। यह पुस्तक समाज और स्वाधीनता-संग्राम सेनानियों में बेहद चर्चित हुई। सरकारी अधिकारी चौकन्ने हो गए। यह पुस्तक नवाबराय के नाम से प्रकाशित हुई थी। उन दिनों वे हमीरपुर जिले में शिक्षा विभाग डिप्टी इंस्पेक्टर के पद पर काम करते थे।

कथा-संग्रह छपने के लगभग छह महीने बाद एक शाम के वक्त जिलाधिकारी,

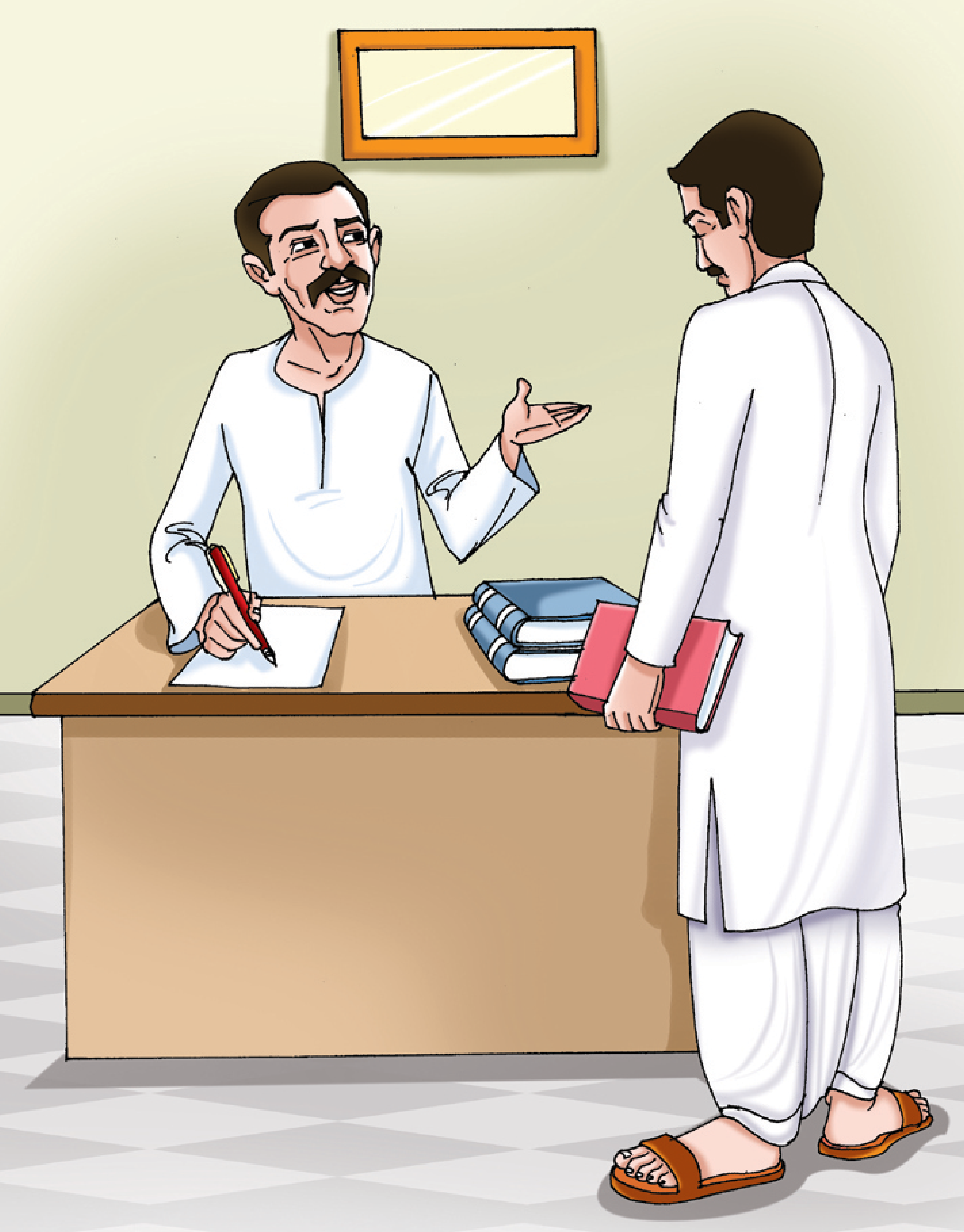

जो वहाँ दौरे पर आया हुआ था, ने नवाबराय को बुलवाया। नवाब बैलगाड़ी तैयार कराकर, रात भर में तीस-चालीस मील का सफर तय करके सुबह वहाँ पहुँचे। जिलाधिकारी के सामने उनकी पुस्तक की एक प्रति रखी हुई थी। उसे देखते ही नवाब का दिल धड़कने लगा।

नवाब को इस बात का पता तो पहले ही लग चुका था कि खुफिया पुलिस इस पुस्तक के लेखक को तलाश कर रही है, अब उन्हें एहसास हुआ कि पुलिस अपनी कोशिश में कामयाब हो गई है और उन्हें सजा देने के लिए ही यहाँ बुलाया गया है।

जिलाधिकारी ने पूछा, "क्या तुम्हीं ने यह पुस्तक लिखी है?"

नवाब ने स्वीकार किया कि वह पुस्तक उन्होंने ही लिखी है।

जिलाधिकारी ने हर कहानी के विषय में नवाब से पूछा। नवाब ने उसके हर सवाल का निडरता से जवाब दिया।

आखिर उसका पारा एकदम चढ़ गया। उसने कहा, "तुम्हारी कहानियों में बगावत भरी हुई है। तुम खुशकिस्मत हो कि यह ब्रिटिश सरकार है। अगर यह मुगल सरकार होती तो तुम्हारे दोनों हाथ काट डाले गए होते।"

अंत में जिलाधिकारी ने फैसला सुनाया कि पुस्तक की सारी प्रतियाँ सरकार के हवाले कर दी जाएँ और भविष्य में वे जिलाधिकारी की इजाजत के बगैर कुछ भी न लिखें।

इस घटना के बाद उन्होंने 'प्रेमचंद' के नाम से लिखना जारी रखा। उन्हें यह नाम उस समय के प्रसिद्ध अखबार 'जमाना' के संपादक दयानारायण निगम ने दिया था।

सन् 1916 में प्रेमचंद का बहुचर्चित उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ, जिसमें वेश्या-समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

प्रेमचंद के इस लेखन में उनकी सरकारी नौकरी का बड़ा योगदान रहा था, जिसमें हर दो-तीन साल के बाद उनका तबादला हो जाता था। इतनी जल्दी-जल्दी तबादला होने से यद्यपि उनकी सेहत पर बुरा असर पड़ा, तथापि इन तबादलों के कारण हर जगह उन्हें नए-नए लोग मिलते और नित नए अनुभव होते। ये अनुभव एक लेखक के लिए सबसे बड़ी पूँजी होते हैं। प्रेमचंद ने अपनी विभिन्न कहानियों और उपन्यासों में इन अनुभवों का उपयोग किया है।

सन् 1920 में महात्मा गांधी के विचारों एवं कार्यों से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने नौकरी छोड़ दी और असहयोग आंदोलन में कूद पड़े तथा जेल भी गए।

इसके बाद प्रेमचंद ने कुछ अरसे के लिए खादी की दुकान खोली, लेकिन उन्हें जल्दी ही यह एहसास हो गया कि दुकान चलाना उनके बस की बात नहीं है। तब उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम बढ़ाया। एक स्थानीय पत्र में संपादक बनने की कोशिश की। मगर जब उसका भी कोई नतीजा न निकला तो बनारस में कुछ महीने तक उन्होंने हिंदी मासिक 'मर्यादा' में संपादक की हैसियत से काम किया। बाद में उन्होंने 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण' आदि पत्रिकाओं का भी संपादन किया।

सन् 1922 में प्रेमचंद का एक और महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'प्रेमाश्रम' प्रकाशित हुआ, जिसमें किसानों और जमींदारों के संबंधों का सजीव चित्रण किया गया है। सन् 1923 में प्रेमचंद ने अपने गाँव में बराबर रहने और वहाँ से चार मील दूर शहर में एक प्रेस और प्रकाशन गृह स्थापित करने का फैसला किया।

सन् 1925 में प्रेमचंद का वृहद् उपन्यास 'रंगभूमि' प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रेम, त्याग और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया गया था। इसके बाद सन् 1928 में 'कायाकल्प', 1931 में 'गबन', 1932 में 'कर्मभूमि', 1933 में 'निर्मला' और 1936

में 'गोदान' प्रकाशित हुआ। 'गोदान' प्रेमचंद का श्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है, जिसमें शोषित भारतीय किसानों के जीवन की समस्याओं का मार्मिक चित्रण है।

यों तो प्रेमचंद की कहानियों के संग्रह अनेक नामों से बाजार में उपलब्ध हैं, किंतु उनकी समस्त कहानियों का एकत्र संग्रह 'मानसरोवर' के नाम से आठ भागों में प्राय: उनके समय से ही प्रसिद्ध है।

उपन्यास और कहानी के अलावा प्रेमचंद ने नाटक, निबंध, जीवनी आदि विधाओं में भी अपनी लेखनी चलाई है।

प्रेमचंद के उपन्यासों को अपने युग की परिस्थितियों एवं समस्याओं का दर्पण कहा जा सकता है। अपने उपन्यासों में प्रेमचंद ने देश के आहत स्वाभिमान एवं भारत की परतंत्रता की पीड़ा को मुखरित किया है। उनकी रचनाओं में मुखरित उनका जीवन-दर्शन सेवा का जीवन-दर्शन है।

यह एक विडंबना ही है कि हिंदी के ऐसे प्रतिष्ठित कथा सम्राट् का सारा जीवन प्राय: गरीबी से संघर्ष करते हुए ही बीता। ऐसे ही समय में बंबई के अजंता सिनेटोन के मोहन भवनानी ने उन्हें बंबई आने और फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखने का आमंत्रण दिया। प्रेमचंद फिल्मी दुनिया में कदम नहीं रखना चाहते थे, लेकिन वहाँ गए बगैर भी उपाय न था, क्योंकि उनपर कर्ज का बोझ बढ़ता ही जाता था। मजबूरन प्रेमचंद ने एक साल के अनुबंध पर दस्तखत कर दिए।

इसीलिए सन् 1934 में उन्होंने अजंता सिनेटोन नामक कंपनी से समझौता करके फिल्मी संसार में प्रवेश किया। वह बंबई (अब मुंबई) पहुँचे और 'मिल मजदूर' तथा 'शेरे दिल औरत' नामक दो कहानियाँ लिखीं। 'सेवासदन' को भी परदे पर दिखाया गया। लेकिन प्रेमचंद निष्कपट व्यक्ति थे। फिल्म निर्माताओं का मुख्य उद्देश्य जनता

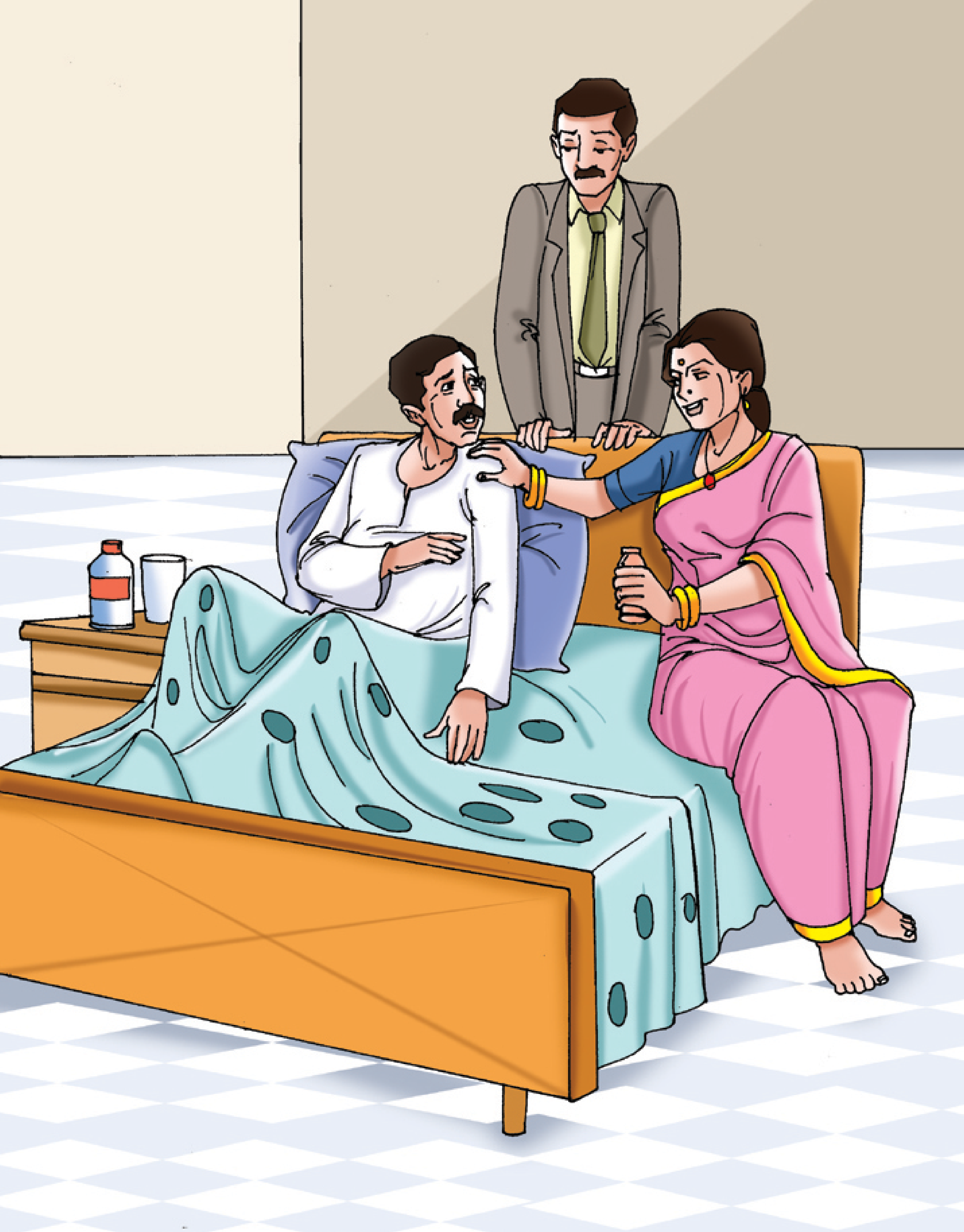

का पैसा लूटना था। उनका यह ध्येय नहीं था कि वे जनजीवन में परिवर्तन करें अथवा लोगों की रुचि को उन्नतिशील बनाकर उन्हें श्रेष्ठ इनसान बनाएँ।

फिल्मों से प्रेमचंद को आठ हजार रुपयों की वार्षिक आय थी, परंतु उन्हें फिल्म निर्माताओं के दृष्टिकोण से अरुचि हो गई। वे फिल्मी-संसार छोड़कर बनारस वापस आ गए।

सन् 1929 में सरकार ने उन्हें 'रायसाहब' की उपाधि देनी चाही; लेकिन प्रेमचंद ने उसे अस्वीकार कर दिया। 16 जून, 1936 को उनकी हालत अत्यधिक खराब हो गई। 19 जून को वे एक सभा में भाषण देने वाले थे। लेकिन यह संभव नहीं था। 24 जून को जब उन्होंने खून की उलटी की, उस समय यह स्पष्ट हो गया कि उनके जीवन की कहानी अब खत्म होने वाली है। पत्नी शिवरानी देवी शीघ्र ही उनके पास पहुँचीं, तब उन्होंने कहा, 'रानी, अब मैं संसार छोड़ रहा हूँ।'

8 अक्तूबर, 1936 को उन्होंने अपने जीवन की अंतिम साँस ली। उस समय वे छप्पन वर्ष के थे।